काव्य एवं काव्य भेद

डॉ. प्राची गौड़

'काव्य' कली का सर्वोत्कृष्ट रूप होता है। पाश्चात्य मनीषी भले ही कहते फिरें कि 'कला, कला के लिए हुआ करती है।' अर्थात् उसमें कलाकार को जीवन का वास्तविक चित्र मात्र खींच देना है, उससे आगे नहीं जाना है, किन्तु भारतीय साहित्यकार कभी भी यह मानने को तैयार नहीं हैं। भारतीयों की दृष्टि में समाज के यथातथ्य चित्र के साथ-साथ उसके उत्थान हेतु उच्च आदर्शों की संस्थापना तथा मानवमूल्यों की रक्षा को भी काव्य का अपरिहार्य अंग समझा जाता है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द्र जी के शब्दों में - ''कला वह है, जिसमें जीवन का सौन्दर्य हो, सृजन की आत्मा हो, जो हम लोगों में गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं।'' काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने यश, धनप्राप्ति, व्यवहारज्ञान तथा सद्यः परमानन्द-प्रतीति के साथ-साथ शिवेतरक्षति (विघ्नध्वंस) को जीवन का शिव-निर्माण या भव्य-आदर्श बताया है। आदर्श का यह उपदेश, काव्य में वेदवाक्यों के समान अनुल्लङ्घ्य अध्यादेश के रूप में (प्रभुसम्मित) नहीं होता है, प्रत्युत 'कान्तासम्मिततया' होता है, अर्थात् - जिस प्रकार कान्ता (कामिनी) अपने प्रियतम को कटाक्ष, भुजक्षेप आदि मधुर हाव-भावों के साथ सरसता उत्पन्न करके, उसे अपने अनुकूल बनाती हुई, अभीष्ट-मार्ग की ओर उन्मुख करती है, उसी प्रकार काव्यकला-कामिनी भी शृंगारादि रसों के रमणीय प्रवाह से आनन्द का सृजन करती हुई, सहृदयों अथवा सामाजिकों को कल्याण की ओर अग्रसर करती हुई, यह शिक्षा देती है कि हमें राम आदि की तरह आचरण करना चाहिए, रावण आदि की तरह नहीं (रामादिवत् प्रवर्तितव्यम्, न रावणादिवदिति)।

'काव्य' वह औषधि है, जो बड़े-बड़े रोगों को सहज ही दूर करने में समर्थ है, यह वह अस्त्र है, जिसके सामने बड़े-बड़े योद्धाओं को घुटने टेकने पड़ते हैं, यह वह वशीकरण मन्त्र है, जिससे पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों को ही नहीं अपितु देवताओं को भी अपने अनुकूल बनाया जा सकता है–

काव्य–कला की कान्तिसे, कान्त होत सब लोग।
मिथिलाधिप वशवर्ति सब, होत कुयोग सुयोग।।

एक किंवदन्ती के अनुसार, राजा भोज की सभा में एक बार कोई दीन ब्राह्मण भोजन की भिक्षा माँगता हुआ जन-सामान्य की भाषा में निवेदन कर बैठा–

माहिषं च शरच्चन्द्र–चन्द्रिका–धवलं दधि।।

इस ललित-पदावली को सुनते ही राजा भोज मन्त्रमुग्ध हो गये और उस याचक-ब्राह्मण की कामना पूरी कर दी।

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण महाकवि पण्डितराज जगन्नाथ के सम्बन्ध में सुना जाता है कि एक बार मुगल सम्राट शाहजहाँ के पास अन्तरङ्ग-सभा में पण्डितराज बैठे हुए थे और विद्या-सम्बन्धी चर्चा चल रही थी, इसी बीच पण्डितराज को प्यास की अनुभूति हुई और उन्होंने जल की इच्छा प्रकट की। शाही फरमान पर एक नवयुवती बाला सिर पर कलश लिए मटकती, छमछमाती हुई आ पहुँची और जल पिलाकर चील गयी। पण्डितराज ने पानी क्या पीया, उस पानी के बदले उस बाला को अपना हृदय दे बैठे। अपने हृदय के उद्गार को पण्डित रोक न सके और काव्य-कामिनी उनके हृदय से उठकर अधरामृत का पान करती हुई सम्राट् के श्रवणरन्ध्र तक जा पहुँची–

इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्कुम्भा,
सुकुम्भारुणं चारु देहं वसाना।
समस्तस्य लोकस्य चेतः प्रवृत्तिं,
गृहीत्वा घटे न्यस्य यातीव भाति।।

पण्डितराज की इस मर्मस्पर्शी चमत्कारपूर्ण काव्यकला से सम्राट शाहजहाँ का हृदय गद्गद हो गया और बोल उठे– ''पण्डितराज! माँगो, क्या माँगते हो? हम तुम्हारी काव्यकला से मन्त्रमुग्ध है'' लेकिन पण्डितराज, पूर्वोक्त भोजराज के दरबार वाले ब्राह्मण की भाँति भोजनभिक्षु तो थे नहीं, वे अपने मन की मुराद को सम्राट के समक्ष प्रकट करते हुए पुनः अपनी काव्यकामिनी का विलास प्रस्तुत किए–

न याचे गजालिं न वा वाजिराज,
न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदाचित्।
इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा,
लवङ्गी कुरङ्गी मदङ्गी करोतु।।

पण्डितराज की इस काव्य-कामिनी की मोहनी से मोहित सम्राट ने तुरन्त उस लवङ्गी बाला को बुलवाया और पण्डितराज के हाथों में समर्पित कर दिया। यह है, काव्य-कामिनी का जादू, जो साधारण जनभाषा के बोलचाल के शब्दार्थो में नहीं अपितु कविभाषा के शब्दार्थो में रहता है। इन्हीं शब्दार्थो को लक्ष्य करके आचार्य भामह ने काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा - ''शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।'' इस सम्बन्ध में आचार्य भामह ने स्वयं प्रश्न उठाकर उसका उत्तर भी दिया है–

गतोस्तमर्को भातीन्दुः यान्ति वासाय पक्षिणः।
इत्येवमादिकं काव्यं? वार्तामेतां प्रचक्षते।

अर्थात् - सूर्य छिप गया, चन्द्रमा चमक रहा है, पक्षीगण अपनें घोंसलों की ओर प्रस्थान कर रहे हैं, इत्यादि शब्दार्थ क्या काव्य है? नहीं, यह तो सामान्य जनभाषा की बातचीत मात्र है।

ऐसी स्थिति में यह जिज्ञासा पैदा होती है कि काव्य वास्तविक स्वरूप क्या है? काव्यत्व के लिए किन गुणों का होना अनिवार्य है? इत्यादि। एतदर्थ कुछ प्रमुख काव्य परिभाषाओं (लक्षणों) को उपस्थापित किया गया है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

काव्य

लक्षण कौति कवते कवयति वा (कु+इ) कविः, तस्य कर्म काव्यम्।

अर्थात्-जो व्यक्ति शब्द करे अथवा मुख से शब्दों को निकाले, वह 'कवि' है और उसका कर्म 'काव्य' है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार, अर्थानुगत शब्दों को समुदाय 'काव्य' है। प्राचीनकाल से विभिन्न साहित्य-मर्मज्ञ आचार्यों ने अपने-अपने ढंग से 'काव्य' को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। कुछ प्रमुख काव्य-परिभाषाओं (लक्षणों) का विवरण इस प्रकार है -

1. अग्निपुराणकार महर्षि व्यास के अनुसार –

संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद् दोषवर्जितम्।।

अर्थात् – संक्षिप्त, इष्ट अर्थ से युक्त, स्फुट अलंकार युक्त, गुणयुक्त तथा दोषरहित पदावली को 'काव्य' कहते हैं।

2. सरस्वतीकण्ठाभरणकार भोज के अनुसार–

अदोषं गुणवद् काव्यमलंकारैरलंकृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति।।

अर्थात् - दोषरहित, गुणसहित, अलंकार-विभूषित तथा रसान्वित वाक्य 'काव्य' कहा जाता है।

3. काव्यलङ्कार आचार्य भामह के अनुसार –

शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।

अर्थात् - अर्थानुगत शब्दों के समुदाय को 'काव्य' कहते हैं। यह अर्थानुगत शब्द-समुदाय चमत्कारपूर्ण तथा कविप्रतिभाप्रकाशित होना चाहिए, अन्यथा वह 'वार्ता' मात्र होगा, जैसा कि आचार्य भामह स्वयं लिखते हैं -

गतोस्तमर्को भातीन्दुः यान्ति वासाय पक्षिणः।
इत्येवमादिकं काव्यं? वार्तामेतां प्रचक्षते।।

4. वक्रोक्तिजीवितकार आचार्य कुन्तक के अनुसार –

वक्राक्तिः काव्यजीवितम्।

अर्थात् -वक्रोक्ति ही 'काव्य' है या काव्य का प्राणभूत है। आचार्य विश्वनाथ कविराज, कुन्तक की उपर्युक्त परिभाषा से सहमत नहीं है, उनका कहना है कि 'वक्रोक्ति' तो एक अलंकार मात्र है और अलंकार काव्य की आत्मा नहीं होता है, अपितु काव्य में केवल उत्कर्ष पैदा करता है।

5. काव्यादर्शकार आचार्य दण्डी के अनुसार –

शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।

अर्थात् - इष्ट अर्थ से युक्त पदावली ही 'काव्य' है, परन्तु आचार्य दण्डी का मानना है कि यह 'काव्य' सर्वथा दोषमुक्त होना चाहिए। 'काव्य' में थोड़ा भी दोष उपेक्षणीय नहीं हैं, क्योंकि सुन्दर शरीर भी थोड़े कुष्ठदोष से दूषित हो जाता हैं -

तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्यं दुष्टं कथञ्चन।
स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम्।

6. काव्यालंकारसूत्रकार आचार्य वामन के अनुसार –

रीतिरात्मा काव्यस्य।
विशिष्टपदरचना रीतिः।
विशेषो गुणात्मा।

अर्थात् - गुणालंकारयुक्त, सुन्दर शब्दार्थसमुदाय ही काव्य है तथा 'रीति' काव्य की आत्मा है, परन्तु आचार्य विश्वनाथ कविराज का मानना है कि 'रीति' तो संघटना (रचना) रूप है और संघटना, शरीर के अंगविन्यास के तुल्य होती है। अतः 'रीति' को 'काव्य' की 'आत्मा' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आत्मा तो सदैव शरीर से भिन्न होती है।

7. ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार –

ध्वनिरात्मा काव्यस्य।

अर्थात् - 'ध्वनि' ही 'काव्य' की आत्मा है। ध्वनि का तात्पर्य काव्य के प्राणभूत व्यंग्यार्थ से है।

ध्वनिकार की प्रस्तुत परिभाषा आचार्य विश्वनाथ कविराज को स्वीकार्य नहीं है। वे ध्वनिकार की तीखी आलोचना करते हुए कहते हैं कि यदि वस्तुमात्र के व्यंग्य होने पर काव्यत्व मानने लगें, तो 'देवदत्तो ग्रामं याति' (राजा देवदत्त गाँव को जाता है), इत्यादि वाक्य भी काव्य हो जायेंगे, क्योकिं इस वाक्य में भी देवदत्त के भृत्य का पीछे-पीछे जाना, ध्वनित हो रहा है।

8. रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार –

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

अर्थात् - रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्दसमुदाय ही 'काव्य' है। इस काव्य-लक्षण में पण्डितराज को रमणीयता से अभिप्रेत केवल रस ही नहीं है, अपितु अर्थ में रमणीयता लाने वाले रस से भिन्न और भी तत्त्वों का समावेश है, जिससे वर्णन में चमत्कार आ जाता है।

9. काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट के अनुसार –

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्यापि।

अर्थात् - दोषरहित, गुणसहित, सर्वत्र अलंकार सहित तथा स्फुटरसयुक्त स्थल में स्फुट अलंकाररहित भी शब्द और अर्थ को 'काव्य' कहते हैं।

इस सन्दर्भ में आचार्य विश्वनाथ कविराज का कहना है कि सर्वथा दोषहीन काव्य का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। काव्य में किसी दोष की उपस्थिति से उस काव्य का मूल्य (कोटि) भले ही कम हो जाये, परन्तु उसका काव्यत्व नष्ट नहीं होता हैं, जैसे - कीटानुविद्ध रत्न का रत्नत्व नष्ट नहीं होता, केवल उसकी उपादेयता में अन्तर आ जाता है, ठीक उसी प्रकार श्रुतिकटुत्वादि दोष 'काव्य' के काव्यत्व को नष्ट नहीं कर सकते, केवल उसके उत्कर्ष में न्यूनता पैदा कर सकते हैं -

कीटानुविद्धरत्नादि–साधारण्येन काव्यता।
दुष्टेष्वपि मता यत्र रसाद्यनुगमः स्फुटः।।

इसके अतिरिक्त कविराज के मत में 'शब्दार्थो' का 'सगुणौ' विशेषण भी उचित नहीं है, क्योंकि गुण केवल 'रस' में ही रहते हैं, शब्द और अर्थ में नहीं -

ये रसस्यांगिनो धर्माः सौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्ष–हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।।

ध्यातव्य है कि यद्यपि आचार्य विश्वनाथ ने आचार्य मम्मट के प्रस्तुत काव्य-लक्षण का जोरदार खण्डन किया है, परन्तु तटस्थभाव से तात्त्विकदृष्टि से विचार करने पर यह खण्डन उचित नहीं लगता है। 'अदोषौ' तथा 'अनलंकृती' में ईषद् अर्थ में 'नञ्'। समास करने पर दोष-परिहार हो जाता है, लेकिन विश्वनाथजी को 'ईषद्' अर्थ भी अभिप्रेत नहीं है।

उदाहरण - स्फुट अलंकार से रहित काव्य का उदाहरण देते हुए आचार्य मम्मट लिखते हैं–

यः कौमारहरः स एव वरस्ता एव चैत्रक्षपास्ते,
चौन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौः,
रेवा–रोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते।।

अर्थात् - (कोई नायिका कहती है कि) जिसने मेरे कौमार्य का हरण किया है, वही मेरा पति है, वही चैत्र की रातें है, वही विकसित मालती-लताओं की सुगन्धित प्रौढ (रत्युद्दीपक) कदम्बपुष्प की हवाएं हैं तथा मैं भी वही हूँ, फिर भी वहाँ नर्मदा के तट पर वेत्रलता के नीचे कामक्रीड़ा के लिए मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है।

यहाँ पर विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता है तथा स्फुटरूप से कोई अलंकार नहीं है, फिर भी यह उदाहरण सर्वथा काव्य कहलाने का अधिकारी है। ध्यातव्य है कि आचार्य विश्वनाथ कविराज ने यहाँ भी खींचतान कर 'विभावना' और 'विशेषोक्ति' अलंकार मानने का प्रयास किया है।

10. साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कविराज के अनुसार –

वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।

अर्थात् - रसात्मक वाक्य को 'काव्य' कहते हैं। प्रस्तुत लक्षण में 'रसात्मकम्' और 'वाक्यम्, ये दो पद दिये गये हैं, इनमें आसत्ति, योग्यता तथा आकांक्षा से युक्त पद समूह को 'वाक्य' कहते हैं, जबकि 'रसात्मक' का अभिप्राय है, - 'रस एवात्मा साररूपतया जीवनधायको यस्य।' अर्थात् - ऐसा वाक्य, जिसका प्राणभूत (आत्मा) रस हैं, उसको 'रसात्मक' कहते हैं। यहाँ पर 'रस' का अभिप्राय है- 'जो आस्वादित होता है, उस सबको 'रस' कहते हैं - रस्यते इति रसः। इससे - (1) रस, (2) रसाभास (3) भाव तथा (4) भावाभास का भी ग्रहण होता है।

उदाहरण -

(1) रस विषयक –

शून्यं वासगृहं शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनै,
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विस्त्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थली,
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता।।

अर्थात् - कोई नवोढ़ा नायिका, शयनगृह को सूना देखकर पलंग (शय्या) से कुछ थोड़ी-सी, धीरे-धीरे उठी और उठकर निद्रा के बहाने लेटे हुए प्रियतम के मुख को बहुत देर तक बड़े ध्यान से देखती रही (कि कही जाग तो नहीं रहे हैं), फिर सोता हुआ समझकर निःशंकभाव से चुम्बन किया, परन्तु छलपूर्वक निद्रा का बहाना बनाये हुए पति की कपोलस्थली को हर्ष से रोमाञ्चित देखकर वह नव-वधू लज्जा से नम्रमुखी हो गई और हँसते हुए प्रियतम ने बहुत देर तक उसका चुम्बन किया।

यहाँ पर नायक 'आलम्बन-विभाव' है सूना घर 'उद्दीपन विभाव है, मुखावलोकन, चुम्बन आदि

'अनुभाव' है, लज्जा, हास आदि 'व्यभिचारी भाव' हैं तथा रति 'स्थायी भाव' है। इन विभावादिकों के द्वारा सहृदय-हृदय में शृंगार-रस' की अभिव्यक्ति हो रही है।

(2) रसाभास विषयक –

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः।
शृंगेण च स्पर्शनिमीलिताक्षी मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः।।

अर्थात् - कामातुर भ्रमर, अपनी प्रिया का अनुगमन करता हुआ पुष्परूप एक पात्र में मधु (पुष्परसरूपी मद्य) का पान करने लगा और स्पर्शसुख से आँखों को बन्द कर लेने वाली मृगी को उसका प्रेमी कृष्णसार मृग सींग से धीरे-धीरे खुजलाने लगा।

कुमारसम्भवम् से उद्धृत प्रस्तुत पद्य में महाकवि कालिदास ने उस समय वर्णन किया है, जब इन्द्र की आज्ञा ने उस समय का वर्णन किया है, जब इन्द्र की आज्ञा से बसन्त को साथ लेकर कामदेव कैलाश पर्वत पर भगवान् शिव की समाधि भंग करने के लिए जा पहुँचा है। वहाँ उसके प्रभाव से मनुष्य तो क्या, पशु-पक्षी भी कामविह्वल होकर कामक्रीड़ा में संलग्न हो गये हैं। यहाँ पशु-पक्षियों से सम्बद्ध शृगारिक वर्णन किया गया है। अतः यह 'रसाभास' का उदाहरण है।

(3) भाव विषयक –

यस्यालीयत शल्कसीम्नि जलधिः पृष्ठे जगन्मण्डलं,
इंष्ट्रायां धरणी नखे दितिसुताधीशः पदे रोदसी।
क्रोधे क्षत्रगणाः शरे दशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो,
ध्याने विश्वम् असावधार्मिककुलं कस्मैचिदस्मै नमः।।

अर्थात् - जिसके सेहरे या शल्क (मछली के ऊपर पाया जाने वाला त्वक् विशेष) के एक किनारे में सम्पूर्ण समुद्र समा गया (मत्स्यावतार), जिसकी पीठ पर अखण्ड-ब्रह्माण्ड आ गया (कूर्मावतार), जिसकी दाढ़ों के बीच पृथ्वी समा गयी (वराहवतार), जिनके नख में दैत्यराज हिरण्यकशिपु समा गया (नृसिंहावतार), जिसके पैर में पृथ्वी और आकाश समा गये (वामनावतार), जिसके क्रोध में क्षत्रिय जाति विलीन हो गयी (परशुरामावतार), जिसके बाणों में दशमुख रावण समा गया (रामावतार), जिसके हाथ में प्रलम्बासुर लीन हो गया (श्रीकृष्णावतार), जिसके ध्यापटल पर सम्पूर्ण विश्व उपस्थित हो गया (बुद्धावतार), तथा जिसके खड्ग में अधर्मियों का लय हो गया (कल्क्यवतार), उस अलौकिक तेज को मेरा नमस्कार है।

प्रस्तुत पद्य में विष्णु के दस अवतारों का वर्णन किया गया है। भगवद् विषयक 'रति' होने से यह 'भाव' का उदाहरण है।

काव्यभेद

उत्तम (ध्वनि), मध्यम (गुणीभूत व्यंग्य) तथा अधम (चित्र) के भेद से काव्य के तीन विभाग किये गये हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है -

1. उत्तम (ध्वनि) काव्य

जहाँ पर 'वाच्यार्थ' की अपेक्षा 'व्यंग्यार्थ' में अधिक चमत्कार पाया जाता है, उसे 'उत्तम-काव्य' कहा जाता है, इसी को वैयाकरण विद्वानों ने 'ध्वनि' के नाम से अभिहित किया है -

इदमत्तममतिशायिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।

उदाहरण -

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतट निर्मुष्टरागोऽधरो,
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं वपुः।
मिथ्यावादिनि दूति बानधवजनस्याज्ञातपीडागमे,
वापी स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्।।

अर्थात् - (नायक को बुलाने के लिए प्रेषित, किन्तु नायकोपभुक्त और अपने को बावड़ी (वापी) में स्नान करके आई हुई बताने वाली दूती के प्रति कुपित नायिका की उक्ति है-)

हे दूति! तुम्हारे स्तनों के किनारे पर लगा हुआ चन्दन पूरा छूट गया है, तुम्हारे अधरोष्ठ की लाली (भी) छूट गयी है, तेरी आँखों का काजल भी बिल्कुल पुंछ गया है और तुम्हारा दुर्बल शरीर पुलकित हो रहा है। अरे! अपनी सखी की पीड़ा को न समझने वाली, झूठ बोलने वाली दूति! तू तो बावड़ी में स्नान करने गयी थी उस नीच (नायक) के पास नहीं गयी थी।

यहाँ पर वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारजनक है। प्रधानतया 'अधम' पद के द्वारा इस व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति हो रही है कि तू बावड़ी-स्नान करने नहीं गई थी, अपितु उस अधम के पास सम्भोग के लिए गई थी।

2. मध्यम (गुणीभूतव्यंग्य) काव्य -

जहाँ पर वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ में अधिक चमत्कार नहीं पाया जाता है, उसे 'मध्यम-काव्य' या 'गुणीभूतव्यंग्य-काव्य' कहते हैं -

अतादृशि गुणीभूतव्यंग्यं व्यंग्ये तु मध्यमम्।

उदाहरण -

ग्रामतरुणं तरुण्या नवमञ्जुलमंजरीसनाथकरम्।
पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया।।

अर्थात् - वेतसलता की मञ्जरी को हाथ में लिए हुए उस ग्रामीण युवक को देखती हुई उस तरुणी के मुख की कान्ति अत्यन्त मलिन हो रही है।

कोई तरुणी वेतसलता-गृह में गाँव के नवयुवक से मिलने का वायदा करके किसी कार्य में व्यस्त होने के कारण उस संकेतित स्थान पर नहीं पहुँच सकी और वह नवयुव वहाँ पहुँच गया। कुछ समय तक प्रतीक्षा करने के बाद साक्ष्य के रूप में वेतस-लता-मञ्जरी को हाथ में लिये हुए वापस आ गया। अब आत्मग्लानि के कारण वेतसलतामंजरीधारी उस नवयुवक को देखकर उस तरुणी की मुखकान्ति मलिन हो गयी।

यहाँ पर 'वेतस-लता-गृह में मिलने का संकेत दे करके भी नहीं आयी' यह व्यंग्यार्थ गौण हो गया है और इसकी अपेक्षा 'तरुणी की मुखकान्ति का मलिन होना' यह वाच्यार्थ अधिक चमत्कारी है। अर्थात् - नायिका के संकेतभंगरूपी अकर्तव्यता में ही वाच्य की विश्रान्ति हो जाती है। अतः यहाँ पर 'वाच्यार्थ' की अपेक्षा 'व्यंग्यार्थ' गौण हो जाता है। इसलिए इसे गुणीभूतव्यंग्यकाव्य या 'मध्यमकाव्य' कहा जाता है।

3. अधम (चित्र) काव्य -

व्यंग्यार्थ-रहित काव्य, अधम काव्य कहा जाता है। इसी को विद्वानों ने चित्रकाव्य कहा है।

यह शब्दचित्र तथा वाच्यचित्र के भेद से दो प्रकार का होता है -

शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम्।

उदाहरण -

स्वच्छन्दोच्छलदच्छकच्छकुहरच्छातेतराम्बुच्छटा-,
मूर्च्छन्मोहमहर्षिहर्षविहितस्नानाह्निकाय वः।
भद्यादुधदुदार-दर्दुर-दरी-दीर्घादरिद्र-द्रुम-,
द्रोहोद्रेकमहोर्मिमेदुरमदामन्दाकिनी मन्दताम्।।

अर्थात् - स्वच्छन्द रूप से उछलती हुई, किनारों के गड्ढो में अत्यन्त वेगपूर्वक प्रवाहित होने वाली स्वच्छ जलधारा की छटा से विगतमोह वाले महर्षियों के सहर्ष स्नान तथा दैनिक कार्यों को सम्पन्न करने वाली, जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ने वाले मेढकों से भरी बड़ी-बड़ी दरारों से युक्त, बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ फेंकने में समर्थ, ऊपर उठने वाली बड़ी-बड़ी तरंगों से उन्मत्त मन्दाकिनी गंगाजी आप लोगों के पापों को नष्ट करें।

यहाँ पर अनुप्रास-प्रदर्शनमात्र कवि का तात्पर्य होने से व्यंग्य तिरोहित हो गया है। अर्थात् कवि का अभिप्राय केवल शब्द-चित्रण में ही दिखायी देता है। अतः यह शब्दचित्र नामक अधमकाव्य का उदाहरण हैं।